# निंदक नियरे (क्यों!) राखिये...!

**आलोचना किसी को पसंद नहीं आती। कुछ लोग दिखावा करते हैं कि इसे बर्दाश्त कर लेते हैं। यहां तक कि वे आलोचना या निंदा का स्वागत करते हैं, लेकिन वे झूठ बोल रहे होते हैं। फिल्म समीक्षक के तौर पर सिनेमा के विभिन्न पहलुओं को खारिज करने का अलग ही कारोबार रहा है, जो पूरी फिल्म को ध्वस्त कर देता है। मैंने भी स्वाभाविक रूप से रूपहले परदे से जुड़े लोगों को उकसाया है।**

चेन्नै से गौतमन भास्करन

जब निर्देशक मणिरत्नम ने अच्छी-बुरी कई फिल्में बनाई थीं, मैंने उनकी फिल्मों की समीक्षा की, जिस पर नाराज होकर उन्होंने मुझसे बात करना बंद कर दिया। तीन साल तक उन्होंने अनदेखी की, क्योंकि मैंने 'बांबे' जैसी फिल्म पर तंज कसे थे। बाद में जब मैंने उनकी एक फिल्म की तारीफ की, तो वे मेरे पास बड़ी गर्मजोशी से वापस आए, जैसे लंबे समय से खोए दोस्त मिले हों। **विक्रमादित्य मोटवानी** भी ऐसे ही रहे, क्योंकि मैंने उनकी फिल्म **'उड़ान'** की कुछ बातों को नामंजूर कर दिया था। बेशक, उन्होंने अपने काम पर मेरी समीक्षा को साजिश समझा होगा, जो कि वे खुल कर नहीं जताते थे। नंदिता दास के साथ भी ऐसा ही था। वे इन बातों को कभी भाव नहीं देती थीं कि मैं एक दोस्त की फिल्म की भी आलोचना कर सकता हूं। यदि ऐसा न करूं, तो इसका मतलब ये है कि आप नहीं चाहते कि मैं पत्रकार की तरह अपना काम करूं।

फिल्म निर्माताओं, अभिनेताओं और आलोचकों के बीच मनमुटाव पत्रकारिता में नई बात नहीं है। कुछ साल पहले फ्रांस में प्रोड्यूसरों और वितरकों ने फैसला किया था कि वे आलोचकों को फिल्म के लिए प्रीमियर में नहीं बुलाएंगे। ऐसे में आलोचकों ने क्या किया? उन्होंने पहले और दूसरे शो के टिकट खरीदे और कॉलम लिखना शुरू कर दिए। जो कुछ फिल्म रिलीज के पहले छप जाता था, अब वह एक दिन बाद छपने लगा।

मतलब यह हुआ कि समीक्षाओं के छपने के पहले फिल्म ने पैसे कमा लिए। मुंबई जैसे शहर में समाचार पत्रों को इतनी मुश्किल नहीं आती। यहां अब फिल्म रिलीज की तारीख के पहले प्रेस स्क्रीनिंग होती है, जबकि दक्षिण के राज्यों के फिल्म वाले ऐन रिलीज के दिन ही मीडिया को बुलाते हैं, जो आमतौर पर शुक्रवार ही होता है। इससे आजकल कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि हर अखबार की अब वेबसाइट है और सोशल मीडिया भी सबकी पहुंच में है, जहां पल-पल की खबरें मिल रही हैं। फेसबुक, ट्विटर पर भी समीक्षाएं दे रहे हैं। अब दर्शक ही आलोचक बन गया है।हालांकि, मुझे अब भी अचरज है कि क्या औसत सिनेमा देखने वाले लोग वास्तव में समीक्षा पढ़ते भी हैं और उस आधार पर अपनी पसंद तय करते हैं! भारत में तो फिल्में हफ्ते भर भी नहीं चल पाती हैं। इन दिनों तो सिनेमा हॉल में मेनू पर अधिक काम हो रहा है, जिसमें समोसा, सैंडविच, पिज्जा, बर्गर और फिंगर चिप्स होते हैं, इसलिए सिनेमा के सफर में स्क्रीन पर क्या हो रहा है, यह देखने के बजाय खाना-पीना, मोबाइल पर चैट और ये बातें ज्यादा हो रही हैं।

कुछ समय पहले येल यूनिवर्सिटी में शाहरुख खान ने कहा था कि मैं अवार्ड लेकर वापस चला जाता हूं। उत्साहित होता हूं और सब खुश होते हैं, लेकिन जब मैं यह पढ़ता हूं कि मुझे गोल्डन केला अवार्ड मिला है और मैं सबसे खराब अभिनेता हूं। मैं थोड़ा दुःखी होता हूं, गुस्सा भी आता है, जब ये केला अवार्ड देने वाले ऐसा करते हैं। आलोचकों और केला अवार्ड वालों की खाल उतार कर बंदरों को खिलाई जाना चाहिए।

अभिनेता और निर्देशक साजिद खान ने भी कहा था कि वे आलोचकों के बारे में नहीं जानते, पर फिल्मों से होने वाली कमाई आलोचकों के चेहरे पर थप्पड़ है। मेरे लिए आलोचकों की कोई अहमियत नहीं है। साजिद ने कहा कि मेरे लिए केवल एक व्यक्ति ही मायने रखता है, जो टिकट खरीदता है। उसे ही फिल्म से न्याय करने का अधिकार है, चाहे वह तारीफ करे या थूके।

ऐसा उन्होने 'हाउसफुल-2' की सफलता पर कहा था। निर्देशक समीर कर्णिक ने भी कहा था कि हम उम्मीद करते हैं कि प्रेस शो करके हम आलोचकों को फिल्म की अच्छी बातें बताएं और वे इस पर कुछ अच्छा लिखें, लेकिन यह उम्मीद झूठी ही साबित होती है, इसलिए वे अब प्रेस शो नहीं करते। जिन मीडिया वालों को फिल्म देखना है और समीक्षा लिखना है, वे अपना पैसा खर्च कर सकते हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि वे मेरा पॉपकॉर्न खाते हैं और मेरे ही खिलाफ लिखते हैं। क्या उन्हें शर्म नहीं आती। समीर फिल्म **'चार दिन की चांदनी'** की समीक्षा पर गुस्सा रहे थे। अभिनेता सलमान खान का भी यही मानना है कि फिल्म देखने वाला ही अंतिम आलोचक है। यदि उसे फिल्म पसंद है, तो बाकी बातों का कोई मतलब नहीं है। मैं मनोरंजन के लिए फिल्में करता हूं, न कि आलोचना के लिए।